मरुक्षेत्र का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक गौरव

सुंधा माता, भीनमाल

सुगाली माता, आऊवाँ

सच्चियाय माता, ओसियाँ

कवि माघ

सोमनाथ मन्दिर, पाली

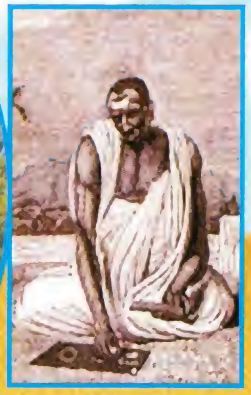

ब्रह्मगुप्त

रणकपुर मन्दिर

जाबाली ऋषि

किराडु मन्दिर, बाड़मेर

प्रकाशक
इतिहास संकलन समिति, मरुक्षेत्र, जोधपुर (राज.)

इतिहास संकलन समिति, मरूक्षेत्र, जोधपुर

हमारे प्रेरणा के स्त्रोत

विवेकानन्द

डॉ. हेडगेवार

श्री गुरुजी

बाबासाहब आपटे

श्री मोरोपन्त पिंगले

ठा. रामसिंहजी

गिर्री - सुमेल का महासंग्राम

विजय नाहर
2 अ 19 कमला नेहरू नगर
पुराना हाऊसिंग बोर्ड, पाली–306 401
मोबाइल : 94148 80321

प्राचीनकाल से ही भारत के वैभव, भारत की सम्पन्नता, सोना उगलती भारत की धरती एवं भारतीय जनजीवन की खुशहाली से आकर्षित होकर विश्व की विभिन्न जातियॉ भारतवर्ष पर आक्रमण करती रही है और पराजित होकर भारत की मिट्टी में अपने को समाविष्ट करती आई है। परन्तु 712 ई. से जिन विदेशी शक्तियों ने भारत पर आक्रमण किये वे उनसे भिन्न प्रकृति के थे। वस्तुतः ये आक्रमण भारतीय संस्कृति को नष्ट करने के लिए थे। इन आक्रमणों में अनेक बार उन्हें विजय मिली और अनेक बार वे पराजित हुए। ये विष–बीज जो कभी मिटने का नाम ही नहीं ले रहे थे। भारत की सत्ता पर अधिकार करने के पश्चात् भी सत्तासीन इन विष–बीजों से अपनी संस्कृति की रक्षा करने के लिए भारतीयों ने भयंकर संघर्ष किये व बलिदान दिए। यही कारण है कि शताब्दियाँ बीत जाने के बाद आज भी सनातन भारतीय संस्कृति अक्षुण्य बनी हुई है। इसी संघर्ष की कड़ी में मारवाड़ का पराक्रमी शासक राजा मालदेव भी था जिसने जीवन पर्यन्त विदेशी शासकों से संघर्ष किया और अपने क्षेत्र में भारतीय संस्कृति को बचाने का प्रयत्न किया।

मेवाड़ के महाराणा सांगा के समय लगभग सम्पूर्ण राजस्थान के राजा उनके नेतृत्व में एक जुट थे। मुगल आक्रमणकारी बाबर के साथ होने वाले खानवा युद्ध के पश्चात् 1528 ई.में उनकी मृत्यु के साथ ही राजस्थान के शासकों की राजनैतिक एकता समाप्त हो गई। अचानक 1532 ई. में जोधपुर में राव मालदेव के रुप में एक शक्ति का उदय हुआ जिसने एक बार पुनः राजस्थान के राजाओं को एक जुट करने का प्रयत्न किया। काफी अंशों में उसने सफलता प्राप्त की। राव मालदेव ने अपने छोटे से मारवाड़ राज्य को अपने पराक्रम, बुद्धिमानी व राजनैतिक सूझबूझ से मात्र दस वर्षों में ही एक विशाल व शक्तिशाली साम्राज्य में परिणित कर दिया। यह एक ऐसा समय था जब मुगल बादशाह हुमायूँ अफगान शेरखां तथा गुजरात के बादशाह बहादुरशाह के विरुद्ध युद्धों में उलझा हुआ था, मालदेव ने राजस्थान के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया था। 17 मई 1940 ई. को मुगल बादशाह हुमायूँ को अफगान शेरखां ने बिलग्राम के द्वितीय युद्ध में पराजित किया उस समय तक मालदेव भारत का एक शक्तिशाली हिन्दू राजा बन चुका था। समकालीन चारण कवि बारहठ आसा ने लिखा है "हिन्दुओं में तो हिन्दू नरेश मालदेव से बढ़कर कोई नहीं मालदेव कालनाशक, यम के जाल से मुक्त करानेवाला श्रेष्ठ शासक है। वह शत्रु नाशक, उपद्रवियों का दननकर्त्ता तथा अनेक दुर्गपतियों से कर वसूल करने वाला है। सुल्तानों को पराजित कर इस महान् राजा ने अपने सिर पर छत्र धारण किया।"

"मालदेव की सैनिक प्रतिष्ठा का इससे अधिक प्रमाण और क्या हो सकता है कि बाबर का बेटा हुमायूँ) उसके द्वार पर सहायता के लिए पड़ा रहा और शेरशाह जैसा वीर शासक उससे यह आशा लगाए रहा कि वह हुमायूँ को पकड़कर उसे सौंप देगा।"[2] समकालीन फारसी इतिहासाकारों ने "राव मालदेव को हिन्दुस्तान का हशमतवाला शासक" कहकर पुकारा है। फरिश्ता[3] एवं बदायूँनी[4] ने मालदेव को "भारत का महान् पुरुषार्थी राजकुमार कहा है।" इस प्रकार फारसी तवारीखों में मालदेव के प्रभा, पराक्रम एवं एश्वर्य

की प्रशंसा मिलती है। अबुल फजल ने उसको भारत के शक्तिशाली राजाओं में से बताया।

यह एक ऐसा समय था जबकि मुगल बादशाह हुमायूँ अफगान शासक शेरशाह सूरी से [illegible] पराजित होकर बिना घर का दर–दर ठोंकरें खाने को विवश हो गया था। उसने किसी तरह सिन्ध [illegible] छोटे से राज्य अमरकोट (उमरकोट) के राजा वीरसाल के यहाँ शरण ली।[6] अब शेरशाह ने हिन्दुस्तान [illegible] बादशाह बनने के स्वप्न को साकार करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया।

चोसा युद्ध के पश्चात् 1543 ई. तक शेरशाह विभिन्न विद्रोहों को दबाने एवं राज्यों पर [illegible] करने के युद्धों में लगा रहा। 1537 ई. में गुजरात के बादशाह बहादुरशाह की मृत्यु हो चुकी थी। [illegible] परिस्थितियों का लाभ उठाकर राव मालदेव ने शीघ्र ही नागौर, मेड़ता, अजमेऱ जालोर, भाद्राजून [illegible] और बीकानेर आदि राज्यों पर अधिकार कर अपने साम्राज्य को बहुत विस्तृत कर लिया। अब उसके [illegible] की सीमाएं दक्षिण–पश्चिम में सौराष्ट्र के राजकोट, गुजरात एवं सिन्ध–अमरकोट के साथ, पूर्व में [illegible] बयाना, फतेहपुर सीकरी और मेवात तक होकर शेरशाह सूरी के साम्राज्य की सीमा दिल्ली–आगरा [illegible] तथा उत्तर में हरियाणा के नारनोल तक विस्तृत हो गई। इस प्रकार मालदेव ने पुनः ''नवकोटि–[illegible] साम्राज्य के निर्माण में सफलता प्राप्त कर ली। मारवाड़ की ख्यातों में मालदेव को 52 युद्धों का [illegible] कहकर सम्बोधित किया गया है। राठौड़ वंशावली तथा रेऊ ने भी इस कथन की पुष्टि की है।[7] फरिश्ता [illegible] अपने ग्रन्थ में उल्लेख किया है; ''मालदेव के शासन काल में मारवाड़ अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया [illegible] मेवाड़, जयपुर (आमेर), जैसलमेर के साथ उसने मित्रता के सम्बन्ध थे। ये सभी राज्य राव मालदेव की [illegible] एवं कूटनीति का लोहा मानते थे। अतः ऐसा कहा जा सकता है कि लगभग सम्पूर्ण राजस्थान [illegible] राजनैतिक प्रभाव क्षेत्र में था।

गिर्री-सुमेल युद्ध

1543 ई. तक राव मालदेव इतना शक्तिशाली हो गया था कि उसका मुकाबला करने [illegible] शेरशाह सूरी को भी सोचना पड़ता था। वह राव मालदेव की बढ़ती शक्ति को भय की दृष्टि से देखने [illegible] था तथा मालदेव की शक्ति को कुचलने का अवसर देखने लगा। इसी बीच दो ऐसी घटनाएं घटित हो [illegible] जिसने शेरशाह को मालदेव पर आक्रमण का अवसर प्रदान किया।

एक, मेड़ता पर मालदेव का कब्जा हो जाने पर वहाँ का शासक वीरमदेव तथा बीकानेर पर कब्जा करने के कारण वहाँ का निर्वासित शासक राव कल्याणमल शेरशाह सूरी की शरण में चले गये, यह [illegible] बिना कि विदेशी संस्कृति के उपासक की शक्ति को कैसे बढ़ा रहे हैं ? शेरशाह ने उन्हें उनका राज्य [illegible] दिलवाने का आश्वासन देकर अपनी शरण में ले लिया। ये दोनों ही जोधपुर घराने के निकट सम्बन्धी [illegible] मेड़ता का वीरमदेव तो अनेक युद्धों में राव मालदेव का सेनानायक था। यहाँ राव मालदेव से एक राजनैतिक भूल हो गई। उसे चाहिए था कि विजय के पश्चात् सन्धि कर उन्हें उनका राज्य लौटा देता तो [illegible] परिस्थिति पैदा ही नहीं होती। उसने दो योग्य, पराक्रमी एवं बुद्धिमान शासकों को अपना विरोधी बना लिया। गिर्री–सुमेल युद्ध में इनकी कूटनीति ही थी जिससे यह युद्ध शेरशाह जीत सका। इन दोनों [illegible] मित्रवत सम्बन्ध मालदेव के अनेक सेनानायकों के साथ था तथा ये मालदेव की ऊँच–नीच का पूरा ज्ञान रखते थे। परन्तु वीरमदेव एवं कल्याणमल की गलती भी कम नहीं थी। उन्होंने भी अपने स्वार्थ पोषण [illegible] लिए विदेशी की शरण लेकर अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय संस्कृति को हानि पहुँचाई।

दो, दर बदर भटकते हुमायूँ ने राव मालदेव को पत्र भेजकर अपने राज्य में शरण एवं सहायता मांगी जिससे वह पुनः अपने साम्राज्य को प्राप्त कर सके। राव मालदेव को अपनी कूटनीति जमाने के लिए यह अच्छा अवसर लगा। उसकी महत्वाकांक्षाएं जाग उठी। वह इसका लाभ उठाकर हिन्दुस्तान में अपने साम्राज्य को और अधिक विस्तार दे सकने के स्वप्न एवं 'किंग मेकर' बनने का स्वप्न संजोने लगा। अतः उसने हुमायूँ के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर उसे 1541 ई. में पत्र भिजवा दिया क्योंकि उस समय स्वयं शेरशाह भी दिल्ली से सुदूर गोर में एक हजार मील की दूरी पर पहुँच गया था। परन्तु नियति को यह स्वीकार नहीं था। पूरे एक वर्ष तक हुमायूँ के कोई समाचार नहीं आए और न उसने मारवाड़ आने का प्रयत्न किया। हमायूँ इस्लाम की भावना से ओतप्रोत था, अतः उसने हिन्दू राजा मालदेव से अधिक विश्वास थट्टा के शाह हुसैन पर किया। उसे आशा थी कि उसकी सहायता से गुजरात पर विजय कर लेगा तथा शेरशाह से दूर रहकर शक्ति संगठित कर लेगा।[9] परन्तु इसमें उसे सफलता नहीं मिली। सम्भवतया यह घटना 1542 ई. के आसपास की होगी। एक वर्ष का समय व्यर्थ गंवाकर उसने मालदेव के प्रस्ताव को स्मरण कर मारवाड़ की ओर चल पड़ा। बड़ी कठिनाइयाँ पारकर वह फलौदी (कुल ए जोगी) पहुँचा।[10] "7 मई, 1542 ई. को हुमायूँ रोहरी से प्रस्थान कर अरू, देरावर फलोदी, देईझर होता हुआ अगस्त के प्रारम्भ के लगभग जोगीतीर्थ पहुँचा।[11] बादशाह के दल को पानी और रशद सम्बन्धी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कहीं–कहीं मार्ग में उन्हें भटकना भी पड़ा। जैसलमेर की सीमा के आसपास उन्हें "सार्थ" को लूटकर अपनी रशद इकट्ठी करनी पड़ी। जोगीतीर्थ पहुँचने पर मालदेव द्वारा भेजी गयी अशर्फियों तथा रशद से हुमायूँ का स्वागत किया गया।[12] उसी समय यह भी संवाद उसके पास भेजा गया कि मालदेव हर प्रकार बादशाह की सहायता के लिए उद्यत है और उसे बीकानेर का परगना सुपूर्द करने को तैयार है।[13]

परन्तु हुमायूँ के साथी मालदेव से शंकित थे। हमायूँ के तीन प्रतिनिधियों, मीर समन्दर, उतका खाँ तथा रायमल सोनी जो बारी–बारी मालदेव से मिलने गये थे, उन्होंने भी मालदेव का हृदय साफ नहीं होने की बात कही।[14] निजामुद्दीन[15] एवं अबुल फजल[16] ने भी ऐसी ही बात लिखी है। हुमायूँ का पुराना पुस्तकालयाध्यक्ष मुल्ला सुर्ख जिसने मालदेव की शरण ली हुई थी, हुमायूँ को समाचार भेजा कि हुमायूँ को अतिशीर्घ मालदेव के राज्य से निकल जाना चाहिए।[17]

वस्तुतः अब परिस्थितियाँ बदल चुकी थी। शेरशाह भी अपने सभी कंटकों से मुक्त हो चुका था। अब वह मालदेव की शक्ति को कैसे कुचला जाये इसी उधेड़बुन में लगा हुआ था। हुमायूँ और मालदेव के मिलने की सूचना ने उसे और सावधान कर दिया। अतः ऐसी गठजोड़ नहीं बन पाये ऐसा सोचकर शेरशाह ने एक चाल चली। अपने एक दूत के साथ शेरशाह ने एक पत्र मालदेव को भिजवाया जिसमें हुमायूँ को बन्दी बनाकर शेरशाह के हवाले करने की बात कही गई थी।[18] परन्तु मालदेव ने इसे स्वीकार नहीं किया। यह चर्चा हमायूँ तक पहुँची। वह भयभीत होकर तुरप्त जोगीतीर्थ से अमरकोट के लिए तेजी से निकल भागा। ज्योंही यह जानकारी मालदेव को मिली, उसने दिखावा करने के लिए एक छोटी सी सेना हुमायूँ के पीछे भेजी जैसे उसे पकड़ने भेजी हो। जोधपुर राज्य से बाहर निकल जाने पर ही हुमायूँ ने सन्तोष की सांस ली।

फारसी एवं मुगल इतिहासकार इसे मालदेव द्वारा दिया गया धोखा कहते हैं जो कि सत्य नहीं है। यदि ऐसा होता तो मालदेव के लिए हुमायूँ को पकड़ना और शेरशाह को सौंपना कोई कठिन कार्य नहीं था। जौहर[19] और गुलबदन बेगम[20] के अनुसार उस समय हुमायूँ के पास मुश्किल से 300 साथी थे। आश्चर्य है कि 300 सैनिकों के बल पर और मालदेव की सहायता से हुमायूँ, हिन्दुस्तान का बादशाह बनना चाहता था।

फिर इस समय अपने सभी झंझटों से मुक्त होकर शेरशाह मालदेव पर आक्रमण की तैयारी में था। ऐसी स्थिति में हुमायूँ को शरण देना अपने आपको मिटाने जैसा ही था। पूर्व में उस समय शेरशाह इतना शक्तिशाली नहीं हुआ था साथही अनेक राज्यों के साथ युद्धों में एवं विद्रोहों को दबाने में उलझा हुआ था। परन्तु अब परिस्थितियाँ बिल्कुल बदल गई। वस्तुतः दोष तो हुमायूँ का था कि वह उचित समय को नहीं पहचान सका। इस समय तो आकर उसने एक प्रकार से मालदेव पर विपत्ति ही खड़ी कर दी। डॉ. ईश्वरीप्रसाद[21], डॉ. कानूनगो[22] एवं डॉ. ओझा[23] जैसे इतिहासकार भी इससे सहमत हैं।

शेरशाह मालदेव की बढ़ती शक्ति से शंकित तो पहले ही से था, अब उसे यह भी भय सताने लगा था कि कहीं मालदेव और हुमायूँ में गठजोड़ न हो जाए ? अन्यथा भारी परेशानी खड़ी हो सकती है। इसलिए उसने यह जानते हुए भी मालदेव उसका अधिनस्त राजा नहीं है फिर भी उसे सन्देश भिजवाया कि हुमायूँ को गिरफ्तार कर शेरशाह के सुपूर्द करे। शेरशाह यह भी जानता था कि मालदेव ऐसा हर्गिज नहीं करेगा। परन्तु यह तो एक कूटनीतिक चाल थी शेरशाह की कि इस पत्र के प्रचार से मालदेव और हुमायूँ एक नहीं हो सकेंगे तथा हुमायूँ को भागना पड़ेगा। इससे गठजोड़ के स्थान पर वैमनस्य पैदा होगा और हुआ भी ऐसी ही। हुमायूँ शेरशाह के कूटनीतिक दाव पर मात खा गया। इस स्थिति के पश्चात् अब शेरशाह मालदेव पर आक्रमण करने में देरी नहीं करना चाहता था। वह 80 हजार की भारी भरकम सेना सहित मालदेव की शक्ति को कुचलने के लिए चल पड़ा। अफगान सेनानायकों के साथ बीकानेर का कल्याणमल एवं मेड़ता का बीरमदेव अपनी–अपनी सेना लिए साथ ही थे। इतना होने पर भी शेरशाह को अपनी विजय पर विश्वास नहीं था। वह राव मालदेव के नेतृत्व एवं राजपूत सैनिकों के पराक्रम को जानता था। राव के 40 हजार सैनिक शेरशाह के 80 हजार सैनिकों, तोपों, हस्ति सेना पर भी भारी पड़ेंगे। फिर भी हिम्मत करके वह अपनी विशाल सेना के साथ मारवाड़ पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ा। वह कौन से रास्ते से युद्ध स्थल तक पहुँचा, उसने कहाँ अपनी छावनी डाली इस विषय में इतिहासकारों के भिन्न–भिन्न मत है। परन्तु ख्यातों के आधार पर निर्धारित स्थान बाबरा ही अधिक उपयुक्त लगता है क्योंकि सुमेल का स्थान गिर्री बाबरा के आसपास ही है।[24] परन्तु एक विषय पर सभी सहमत हैं कि युद्ध सुमेल के मैदान में हुआ था। सुमेल एक वर्षाति नाला है तथा उसके पास विशाल मैदान है, जहाँ आज भी चूने से लदे पत्थर युद्ध शहीदों की याद ताजा करते हैं।[25]

शेरशाह के आक्रमण अभियान की सूचना पाते ही मालदेव भी अपने प्रमुख सेनानायकों के साथ 40 हजार की सेना लेकर शेरशाह का मुकाबला करने के लिए चल पड़ा। उसने गिर्री नामक स्थान पर अपनी सेना का पड़ाव डाला। गिर्री मोर्चा लगाने के लिए बड़ा उपयुक्त स्थान है। दो माह तक दोनों के मोर्चे लगे रहे।[26] दोनों अवसर की ताक में रहे। शेरशाह अपनी विजय के प्रति आश्वस्त नहीं था। अतः उसने अब कूटरचित कार्यों पर ध्यान दिया। वह मालदेव के सेनानायकों में फूट डालना चाहता था। दूसरी ओर मालेदव शेरशाह की सेना को गिर्री के घाटे में घेरना चाहता था। वह चाहता था कि शेरशाह आगे बढ़े तब वह उसे तीन ओर से घेर लें। शेरशाह की कठिनाई भी कम नहीं थी। वह अपनी राजधानी से बहुत दूर था। आसपास उसका मित्र राज्य भी नहीं था जहाँ से उसे रसद–पानी आसानी से मिल सके। वह जानता था कि ज्यों–ज्यों समय बीतता जाएगा, उसकी कठिनाइयाँ भी बढ़ती जाएगी। शेरशाह निश्चित ही इस परिस्थिति से परेशान था। अतः उसने मेड़ता के वीरमदेव के साथ मिलकर एक कूटरचित षड़यन्त्र रचा। उसने पहला कार्य किया कि मेड़ता के वीरमदेव से दो पत्र लिखवाये। एक कूँपा की ओर से तथा दूसरा जेता की ओर से

शेरशाह को लिखवाये तथा उन्हें मालदेव के खेमें के आसपास ऐसे डलवाये कि उन पर मालदेव की दृष्टि पड़ जाये।[27] दूसरा कार्य किया कि एक व्यापारी के द्वारा मालदेव के प्रमुख सेनानायकों के खेमों में गुप्तरूप से ढाले पहुँचायी, जिनमें प्रत्येक 20–20 हजार रुपये एवं फरमान डालकर उन्हें जूट से सी दिए।[28] जो पत्र कूँपा जेता के द्वारा लिखवाये गये थे उनमें शेरशाह को यह आश्वासन दिया गया था कि वे युद्ध के अवसर पर मालदेव का साथ छोड़ देंगे तथा मालदेव को कैद करके आपको सौंप देंगे।[29] उपरोक्त दोनों कार्यों के अलावा एक पत्र मेड़ता के वीरमदेव के हस्ताक्षरों से मालदेव को भिजवाया गया गुप्तचर के माध्यम से, जिसमें मालदेव को अवगत कराया गया कि आपके अखेराज सोनगरा, जेता व कूँपा सहित अनेक सेनानायक शेरशाह के हाथों बिक चुके हैं। ये सभी ऐन युद्ध के समय आपसे विद्रोह कर शेरशाह के साथ मिल जाएगें। मैं आपसे नाराज अवश्य हूँ, परन्तु निकट सम्बन्धी होने के कारण आपको इस षड्यन्त्र की जानकारी देना अपना दायित्व समझता हूँ। यदि आपको मेरी बात पर विश्वास न हो तो स्वयं देख लें कि मैं शेरशाह की सेना के साथ नहीं हूँ। आप अपने सेनानायकों के खेमों में जाकर उनकी ढालों का निरीक्षण करलें। आपको 20–20 हजार रुपये तथा फरमान उनमें छिपाये मिल जायेंगे। पत्र मिलने पर एक बार तो मालदेव को विश्वास ही नहीं हुआ। परन्तु वह वीरमदेव के हस्ताक्षर पहचानता था अतः उसने ढालों का निरीक्षण करने का विचार कर सेनानायकों के खेमों में घुसा। एक–एक करके देखा तो वीरमदेव की बात सत्य निकली। जेता और कूँपा द्वारा लिखे पत्र भी मिले। मालदेव सन्न रह गया । उसके सोचने समझने की शक्ति कुण्ठित हो चुकी थी और धरती पावों के नीचे से खिसकती नजर आई। अविश्वास का कोई कारण दिखायी नहीं दे रहा था, सभी की पुष्टि हो गई थी। उसने किंचित भी यह विचार नहीं किया कि उसके साथ अपने जीवन की परवाह न करते हुए 52 युद्धों में विजयश्री दिलानेवाले ऐसे देशभक्त, स्वामीभक्त, वीरों पर अविश्वास करने जैसा घिनौना कृत्य कैसे सोच सकता हूँ। यह शत्रु सेना का षड्यन्त्र भी हो सकता है यह चिन्तन उसके मन में कैसे नहीं आया ? वीरमदेव जैसा विद्रोही जो राज्यप्राप्ति के लिए परकीयों की शरण में जा सकता है, शेरशाह की शरण ले सकता है, अचानक उसके मन में मालदेव के प्रति सहानुभूति कैसे जागृत हो उठी ? कहते हैं "विनाश काले विपरीत बुद्धि" – ऐसा ही मालदेव के साथ हुआ। उसने अपने विश्वस्त सेनानायकों द्वारा भरोसा दिलाने पर भी विश्वास न कर एक विद्रोही, स्वार्थी व्यक्ति पर भरोसा किया।[30] अचानक 4 जनवरी 1544 ई. की रात्रि में अपनी सेना को लेकर अपनी राजधानी की ओर पलायन कर गया।[31] 5 जनवरी प्रातः जगने पर यह दृश्य देखा अखेराज सोनगरा सहित जेता और कूँपा भौचके रह गये। उन्हें मालदेव से ऐसे व्यवहार की अपेक्षा नहीं थी। उन्होंने तुरन्त अपने 12000 सेना के सेनानायकों को आगे की परिस्थिति पर विचार करने के लिए एकत्र किया जिनमें मुख्य रूप से पाली के अखेराज सोनगरा, सोजत के कूँपा तथा बगड़ी के जेता सहित अखेराज राठौड़, खींवकरणजी, भानजी चारण, लूम्बा भाट, अल्लादात कामख्यानी (सभी पाली जिले के थे) थे। दृढ़ता के साथ यह निर्णय किया कि अपने राव मालदेव के मन के अविश्वास के कलंक को मिटाने के लिए अखेराज सोनगरा, कूँपा एवं जेता के नेतृत्व में शेरशाह की विशाल सेना के साथ टक्कर लेंगे। जब तक एक भी सैनिक रहेगा, रक्त की अन्तिम बूंद तक लड़ेंगे।

शेरशाह अपने कूटरचित कार्यों का परिणाम देखने के लिए उत्सुकता से प्रतिक्षा कर रहा था कि अचानक जेता–कूँपा की सेना ने आगे बढ़कर शेरशाह की सेना पर हमला बोल दिया। शेरशाह को इसकी कल्पना नहीं थी बल्कि वह तो मालदेव की ओर से समझौते के प्रस्ताव की प्रतिक्षा कर रहा था। उसकी सेना में इस अचानक आक्रमण से हड़कम्प मच गया। आक्रमण इतना भीषण था कि देखते ही देखते शेरशाह की

80 हजार सेना के पांव उखड़ने लगे। मारवाड़ की घुड़सवार सेना का शेरशाह की हाथियों की फौज मुकाबला करने में असमर्थ दिखायी दे रही थी। राजपूत वीर अपनी जान हथेली में रखकर अद्‌भुत पराक्रम दिखा रहे थे। अफगान सैनिकों की लाशों से मैदान पट गया। रक्त की नदी बहने लगी। हाथी चिंघाड़ते हुए भागने लगे। यह देख शेरशाह के होंसले पस्त हाने लगे। सुल्तान ने खुदा की शरण ली और नमाज पढ़ने लगा।[32] दिन का अधिकांश समय निकल चुका था। ऐसा लग रहा था कि सायंकाल होने के पूर्व ही युद्ध का निर्णय हो जाएगा तथा शेरशाह की बचीखुची सेना भागती दिखायी देगी। परन्तु होता वही है जो नियति को स्वीकार होता है। थोड़ी ही देर में शेरशाह के सेनापति जलाल खाँ जलवानी के नेतृत्व में अचानक एक बड़ी फौज (कुमक) शेरशाह की सहायता के लिए आ पहुँची।[33] ऐसा लगा जैसे मरे हुए शेरशाह में पुनः जान आ गई हो। पूरी ताकत एवं नवउत्साह में भरकर अफगान सेना ने मारवाड़ की सेना पर भरपूर आक्रमण किया। देखते–देखते युद्ध का पासा पलट गया। दिनभर से लड़ रहे राजपूत सैनिक एक–एक कर शहीद होते जा रहे थे। विजय तो दूर अब बचने का कोई रास्ता नहीं देख भयंकर शब्दों में हर हर महादेव का घोष करतें हुए मारवाड़ के राजपूत सैनिक भूखे शेरों की तरह शेरशाह की अफगान सेना पर टूट पड़े। शीघ्र ही युद्ध का निर्णय हो गया। अफगान सेना जीत गई। एक एक राजपूत ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए, अपने राजा के विश्वास को पक्का करने के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर दिए। शेरशाह राजपूत वीरों के पराक्रम को देखकर विस्मित और अभिभूत था। सुल्तान ने सन्तोष की सांस ली और हाथ जोड़ नवाज की मुद्रा में युद्ध स्थल पर ही बैठकर अल्ला को धन्यवाद दिया और बोल उठा–''खुदा का शुक्र है किसी तरह फतह हासिल हो गई, नहीं तो एक मुट्ठी बाजरे के लिए मैं हिन्दुस्तान का साम्राज्य खो देता। यदि मालदेव अपनी सेना के साथ नहीं लौटता तो आज हार निश्चित थी।[34]

ज्यौंहि युद्ध के परिणाम की मालदेव को जानकारी हुई, वह पश्चाताप की भट्टी में जलने लगा। उसे इस बात का बड़ा अफसोस हुआ कि कैसे वह अपने खास ऐसे स्वामीभक्त सेनानायकों पर अविश्वास कर बैठा जिन्होंने मारवाड़ के नवकोटि साम्राज्य निर्माण में एकाध नहीं पूरे 52 युद्धों में मालदेव के लिए विजयें हासिल की। मालदेव की भूल के कारण इस युद्ध में पाली के अखेराज सोनगरा, सोजत के कूँपा एवं बगड़ी के जेता जैसे महापराक्रमी सेनानायकों सहित 12 हजार वीरों को उसने खो दिया। युद्ध के पश्चात् स्वयं शेरशह ने भी इन हुतात्मा वीरों को श्रद्धाजंलि देते हुए कहा, ''अखेराज सोनगरा, कूँपा एवं जेता जैसे वीर मेरे पास होते तो मैं सारे संसार को विजय कर लेता ।'' ''राजपूत सैनिक अफगानों पर टूट पड़े। वे तलवारों से लड़ने के लिए अपने घोड़ों से उतर पड़े। शेरशाह ने इन राजपूतों पर अपने हाथी झौंक दिए और तोप तथा तीरों से अपने आक्रमण का समर्थन किया। सभी राजपूत वीरता से लड़ते–लड़ते मारे गये।[35]

अपनी शक्ति पर अत्यधिक अभिमान होने के कारण मालदेव ने इस युद्ध के पूर्व आमेर एवं चित्तौड़ के शासकों को भी आमंत्रित नहीं किया जबकि ये उसके मित्र थे।

गिर्री–सुमेल युद्ध के पश्चात् मेड़ता, बीकानेर, अजमेर, नागौर एवं जोधपुर पर भी शेरशाह ने अधिकार कर लिया। ''जोधपुर पर शेरशाह का मात्र 524 दिन तक अधिकार रहा, तत्पश्चात् मालदेव ने पुनः जोधपुर पर अधिकार कर लिया।[36] 1557 ई. आते–आते मालदेव ने पुनः अपने सम्पूर्ण साम्राज्य क्षेत्र पर अधिकार कर लिया।